वेणीसंहारं नाटक मे वीर रस के प्रकार

डा. हेमन्तकुमार नेपाल
सहायक प्राध्यापक साहित्य विभाग सिक्किम सरकारी संस्कृत महाविद्यालय, साम्दोङ

सारः- स्वरूप के आधार पर काव्य के श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य दो प्रकार के भेद है। दृश्य काव्य के रूपक और उपरूपक दो प्रकार के भेद है। इनमे रूपक के दस और उपरूपक के अठाह उपभेदका उल्लेख संस्कृत साहित्यशास्त्र में किया गया है। दस प्रकार के रूपकों मे नाटक अधिक विकसित, लोकप्रिय, रोचक एव सफल विधा के रूप मे हमारे समक्ष आदिकाल से आज तक अक्षुण्ण विद्यमान है। इस का उद्भव की अस्तित्व ऋक्वैदिक काल से प्राप्त होता है। अतः कहा जा सकता सृष्टि के उद्भव काल से ही किसी न किसी रूप मे नाटक का भी उद्भव हुवा है। अतः भरत ने भी नाट्य को पञ्चम वेद स्विकारा है। नाटक का प्रमुख उद्देश्य अनुकरण वा अभिनय के माद्यम से लोक को आनन्द प्रदान करना है। गौण रूप मे चतुर्वर्ग फलप्राप्ति भी नाटक का उद्देश्य है। नाटक के प्रमुख तत्व नाटकीय कथावस्तु, नेता वा चरित्र एवं रस के माध्यम से नाट्यानन्द प्राप्त होता है। संस्कृत नाट्यसिद्धान्त के आधार मे नाटक का कथावस्तु ख्यातिप्राप्त ऐतिहासिक होना चाहिए। प्रमुख चरित्र वा नायक उत्तमकूलका वीर नेनृत्व निर्वाह करने मे सक्षम सत्क्षात्र होना चाहिए। रस शृङ्गार और वीर मे एक अङ्गी रस होना चाहिए। नायिका कुलिन मुग्धा प्रकृतिकी होना चाहिए। अन्य रस अङ्गी रस के सहायक रस के रूप मे व्यक्त होते है। वेणीसंहारम् नाटक संस्कृत नाट्य साहित्य का एक सफल नाटक है। इसकी संरचना सप्तम शताब्दी के अन्त तथा अष्टम शताब्दी के आरम्भ के कन्याकुब्ज (कन्नौज) मे रहने वाले शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण भट्टनारायण ने किया है। इस नाटकको नाटककार ने संस्कृत नाट्यशास्त्र के विशेषताएँ एवं नाट्य नियम को अङ्गिकार करते हुए निर्माण किया है। नाटक मे नाट्योचित सम्पूर्ण कौशल भाषा, शैली, संवाद, कथावस्तु, कार्यावस्था, अर्थप्रकृति, सन्धि, देश, काल, परिस्थिति, द्वन्द आदि का विन्यास किया है। इस नाटक मे द्वन्द का घनत्व प्राप्त होता है और आन्तरिक एवं बाह्य दोनो प्रकार के द्वन्द पाए जाते है। नाटक मे आन्तरिक द्वन्द से ज्यादा बाह्य द्वन्द प्रभावी है। नाटक का अङ्गी रस वीर रस है। वीर रस के सभी दया वीर, दान वीर, धर्म वीर और युद्ध वीर रस अभिव्यक्त होते हुए भी नाटक का अङ्गी रस युद्ध वीर रस है। इसका उपजिव्य काव्य महाभारत है। नाटक की समाप्ति संस्कृत नाट्यशास्त्र के विरुद्ध दुःखान्तक है। नाटक मे सहायक रस के रूप मे रौद्र, भयानक, अद्भुत, विभत्स, शृङ्गार आदि रस आये है।

कुञ्जी शब्दः- स्थायिभाव, रस, वीर, उत्साह, नाटक, विशेषता, चरित्र, दया, दान, धर्म, युद्ध, आदि।

रस परिचय

रसशास्त्र के आधार पर किसी भी विधा के साहित्य द्वारा प्राप्त होने वाले परमानन्दको ही रस कहा जाता है। साधारण रूप से कहा जाये तो किसी भी प्रकार के साहित्य वा काव्य अध्ययन करने से, सुनने से या अभिनेय काव्य के दर्शन से साहित्य रसिकों के हृदय में जिस प्रकार की आनन्द अभिव्यक्त होती है वो ही रस हैं। इस तरह की आनन्द लौकिक भोज्य पदार्थों की उपभोग एवं लौकिक अनुभूति से भिन्न होती है। अतः इस को साहित्य का रस कहा गया हैं। दुसरी तरह से कहा जाए तो साहित्य द्वारा प्राप्त चरम सन्तुष्टि ही रस है। तैत्तिरियोपनिषद् (२-७-२) रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति कहा गया है। इसका साधारण अर्थ वह रसरूप है, रस ही वो आनन्दमय रूप में परिणत होता है। पूर्व वाक्य में प्रयोग किया गया सः शब्द आनन्द का पर्यायवाची है। इस का स्पष्टिकरण उत्तर वाक्य में प्रयोग किया गया रसं ह्येवायं उपवाक्य प्रदान करता है। उपनिषद् में इस वाक्य को ब्रह्मानन्द अर्थ में प्रयोग किया है, परन्तु रसशास्त्रीयों नें इस वाक्य को दृष्टान्त वाक्य के रूप में राखकर विवेचना किया हैं। इसी दृष्टान्त के आधार पर कहा जा सकता है रसवादी एवं ध्वनिवादी आचार्यों नें भारतीय साहित्य शास्त्रों मे रस को आनन्द के पर्यावची माना हैं। अतः कहा जा सकता है साहित्य द्वारा प्राप्त आनन्द एवं सन्तुष्टि लौकिक साधारण वषय वस्तु उपभोग के सुख एवं उपाय से प्राप्त नही किया जा सकता। इसिलिए इसको अलौकिक कहा गया है। क्यूं की रस अन्तरिन्द्रिय द्वारा उनुभूत एवं स्वयं संवेदित होता है। भरत ने भी रस रहीत कोही शब्द का अर्थ प्रवर्तित नही होता कहा है। साहित्य के आनन्द अर्थ में रस शब्द का व्युत्पत्ति भावपरक रसस्यते आस्वाद्यते इति रसः इस तरह से किया जाता है। इस प्रकार की व्युत्पत्ति करने से भाव, भावाभास, रसाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि एवं भावशवलता सभी को ग्रहण किया जाता हैं। रस वाद के प्रतिष्ठापक भरत ने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भाव द्वारा अभिव्यक्त सामाजिक व्यक्ति के अन्तर्हृदय में सुसुप्ति अवस्था में नित्य रहनेवाले स्थयी भाव को ही रस कहा है, ये सर्वविदित है। अतः भरत का मत अनुसरण करते हुए मम्मट ने भी रस का विवेचन किया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ रस को परिभाषित करते हुए कहते है:-

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेचसाम्।।[1]

सामाजिक व्यक्ति के हृदय में नित्य विद्यमान स्थायी भाव विभाव, अनुभाव एवं सञ्चारिभाव के माध्यम से व्यक्त होने पर

[1] विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, सन् २०००, (दशम-सं), सत्यव्रत शर्मा व्याख्याकृत, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, पृ. ९९

रसत्व रूप प्राप्त करते हैं। सामाजिक व्यक्ति के हृदय मे विद्यमान रति, हास आदि को जो आस्वाद्य योग्य बनाता है उसी को विभाव कहा जाता है। विभाव रस आस्वादन के लिए अङ्कुरोत्पत्ति करता है। इस के आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव प्रमुख दो भेद हैं। विषयालम्बन और आश्रयालम्बन विभाव आलम्बन विभाव के दो प्रकार के उपभद हैं। आलम्बन के गुण, आलम्बन के चेष्टा, आलम्बन के अलङ्कार एवम् प्रकृति उद्दीपन विभाव के चार प्रकार के उपभेद होते हैं। स्थायी भावों को अनुभावन अथवा ज्ञापन कराने वाले भावों ही अनुभाव हैं। वाणी तथा अङ्ग सञ्चालन आदि के माध्यम से व्यक्त अभिनय रूप भावाभिव्यञ्जन को अनुभाव कहा जाता है। विश्वनाथ नें आलम्बन, उद्दीपन आदि कारणों से उत्पन्न भावों को बाह्य प्रकाशित करने वाले विशेष कार्य होते हैं इन्ही कार्यों को अनुभाव कहा जाता हैं कहा हैं।[2] इसके कायिक अनुभाव, वाचिक अनुभाव, मानसिक अनुभाव, आहार्य अनुभाव और सात्विक अनुभाव करके पाँच प्रकार के भेद हैं। इन में सात्विक अनुभाव के स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्पन, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय आठ प्रकार के उपभेद हैं। कोही भावविशेष स्थायी भाव के पुष्टि के लिए उत्पन्न होते है और स्थायी भाव के अन्दर तिरोहित होते है। उसी को व्यभिचारि भाव वा सञ्चारि भाव कहा जाता है। सामाजिक व्यक्ति के हृदय में वासना रूप में स्थित स्थायी भाव अतिरिक्त किसी क्षण उत्पन्न और तत्काल विलिन होने वाले भाव भी होते हैं। ये भाव स्थिर नही होते। इस प्रकार के भाव को सञ्चारि भाव कहा जाता हैं। ये प्रत्येक स्थायी भावों में समान रूप से सञ्चारण करते हैं। इसी चञ्चल स्वभाव के आधार में इन्हों को व्यभिचारि भाव वा सञ्चारि भाव कहा गया हैं। ये निर्वेद, आवेग, दैन्य, भ्रम, मद, जडता, उग्रता, मोह, विवोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, संत्रास, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चपलता, ग्लानी, चिन्ता और वितर्क तेत्तीस प्रकार के हैं। विश्वनाथ के विचार में उक्त तीन प्रकार के भावों द्वारा व्यक्त स्थायी भाव को रस कहा जाता है। रस स्वरूप प्रतिपादन करते हुए मम्मट ने कहा हैः-

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।

विभाव अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।

व्यक्तः सतैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।।[3]

लौकिक व्यवहार सम्पादन करने के लिए जो कारण कार्य और सहकारी भावों की आवश्यकता एवं अनिवार्यता रहती हैं। जिस तरह लौकिक व्यवहार सम्पादन में इन्हों की महत्व रहती हैं। उसी तरह रती, हास आदि स्थायि भाव नित्य विद्यमान नाट्य एवं काव्य में कारण, कार्य और सहकारी भाव को विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव कहा जाता हैं। अर्थात जिस तरह लौकिक व्यवहार सम्पादन करने में कारण, कार्य एवं सहकारी भाव की भूमिका रहती उसी तरक स्थायि भाव नित्य विद्यमान नाट्य एवं काव्य में रसाभिव्यक्ति के लिए विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव की भूमिका रहती हैं। अतः उन्ही विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव द्वारा अभिव्यक्त स्थायि भाव को रस कहा जाता हैं। मम्मट का कहने की तात्पर्य रति, हास आदि स्थायि भाव विभाव, अनुभाव व्यभिचारी भाव व्यञ्जना वृत्ति द्वारा अभिव्यङ्ग्य होकर साधारणिकृत होनेपर रस रूप में अभिव्यङ्ग्य होते हैं।

सत्त्वोद्रेकदखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।।

लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित् प्रमातृभिः।

स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।[4]

रज, तम गुण गौण होकर केवल सत्व गुण का उद्रेक होने के कारण स्वयं प्रकाशित आनन्दचिन्मय लौकिक शुख, दुःख, मोहात्मक ज्ञान से स्पर्श रहित प्रमातृ द्वारा आस्वादन करने पर ब्रह्म ज्ञान के आस्वादन समान। जिसका प्राण ही लोकोत्तर चमत्कार हो। अपनी आकार के समान अभिन्नत्व रूप से रस का आस्वादन किया जाता है। कहने का तात्पर्य किसी साहित्य रसिक द्वारा रसास्वादन के स्थिति में मानवीय स्वभाव में विद्यमान रज और तम गुण गौण रहते हैं। इसिलिए सत्व गुणका उद्रेक होता है। सत्व गुण की प्रभाव प्रवल होने से कोही योगी द्वारा किए जाने वाले ब्रह्मानन्द अनुभूति के समान अनुभूत किया जाता है। अतः लौकिक बाह्य ज्ञान से स्पर्श शून्य रहता है। साहित्य रस आस्वादन का प्राण ही अलौकिक चमत्कार वा आनन्द उत्पन्न करना है। अतः रसास्वादन ममत्व एवं परत्व के भाव से उपर, सविकल्पक एवं निर्विकल्पक उभयात्मक प्रकृति द्वारा अपने ही आकार के समान अनुभूति गम्य होने से आस्वादन किया जाता है। पूर्वीय काव्य शास्त्र में साहित्य शास्त्रियों ने नाटक मे आठ प्रकार के रसों की स्थिति को मान्यता

[2] विश्वनाथ, सन्. २०००, पूर्ववत्, पृ २००.

[3] मम्मट, काव्यप्रकाशः, सन् १९९८, (एकादश सं.) सत्यव्रत सिंह व्याख्याकृत, वाराणासी : चौखम्बा विद्याभवन, पृ. ६५

[4] विश्वनाथ, सन्. २०००, पूर्ववत्, पृ १०५.

प्रदान किया हैं। आचार्य भरत ने आठ प्रकार के रसों को कारिका के माध्यम से इस तरह से उल्लेख किया है-

श्रृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।

बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः[5]॥

भरत के मत को अनसरण करते हुए मम्मट ने भी कारिका द्वारा ही कहा है-

श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।

वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता[6]॥

विश्वनाथ ने भी कहा हैं-

श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।

वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः[7]॥

विश्वनाथ ने "इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः" इस उपवाक्य के माध्यम से नाट्य में शान्त रस की भी स्थिति को स्वीकारा है। इसके अतिरिक्त इन्हों ने-

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।

स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्[8]॥

उक्त कारिका के माध्यम से विश्वनाथ ने विदु शब्द का प्रयोग करके भरत मुनि की मान्यता में दसवाँ रस वत्सल रस है। इसके चमत्कार अन्य रसों के चमत्कार से अतिरिक्त प्रकार का अनन्द है। इसका स्थायी भाव वात्सल्य प्रेम है और वात्सल्य स्नेह के भाजन पुत्र आदि सन्तान है। इस तरह वत्सल रस को काव्य में स्थान दिया है। इस विषय पर पण्डितराज जगन्नाथ ने –

रसानां नवत्वगणना च मुनिवचननियन्त्रिता भज्यत, इति यथाशास्त्रमेव ज्यायः[9]।

उक्त उक्ति द्वारा जगन्नाथ ने भरतमुनि द्वारा बहुत सोच समझकर जो रसों की संख्या नौ बताई है इस को न मानकर भक्ति को जो रूपगोश्वामि आदि द्वारा मान्यता प्रदान किया गया भक्ति रस को दशम रस मान लिया जाए तो सकल साहित्य दर्शन उवट-पलट हो जाएगा किसी का भी एक विषय पर सङ्गत नही होगा। अतः इस विषय में शास्त्रों का अनुसरण करके चलना होगा। अतः रस की संख्या नौ ही स्विकारने की सभी को सुझाव दिया है। इस आधार पर जगन्नाथ ने रस की संख्या नौ ही स्विकारा है। अतः साहित्य शास्त्र में रस की संख्या नौ प्रकार के हैं, इनके स्थायी भाव, अधिष्ठात्री देवता एवं वर्ण भी भिन्न-भिन्न हैं। इसको निम्न तालिका के माध्यम से दर्शाया जा सकता-

क्र.सं	रस	स्थायिभाव	देवता	वर्ण
१	श्रृङ्गार	रति	विष्णु	श्याम
२	हास्य	हास	प्रमथगण	श्वेत
३	करुण	शोक	यम	कपोत
४	रौद्र	क्रोध	रुद्र	रक्त
५	वीर	उत्साह	महेन्द्र	स्वर्ण वा हेम
६	भयानक	भय	काल वा कृतान्त	कृष्ण
७	विभत्स	जुगुप्सा	महाकाल	नील
८	अद्भुत	विस्मय	गन्दर्भ	पीत
९	शान्त	निर्वेद वा शम	नारायण	चन्द्र-श्वेत

इस लेखका मुख्य उद्देश्य वीर रस अङ्गी रस के रूप मे स्थित भट्टनारायणद्वारा विरचित नेणीसंहासम् नाटक मे व्यक्त वीर रस के प्रकाकको अध्ययन करना है। अतः अन्य रस विवेचना प्रसंगको छोडकर केवल वीर रसको अध्ययनका कन्द्रविन्दु बनाते हुए इस कृतिका अध्ययन किया जाएगा।

वीर रसः-

[5] भरत, नाट्यशास्त्र, सन् २०१५, (द्वितीय सं) मनोरमा हिन्दीव्याख्या, द्वितीयो भाग, पारशनाथद्विवेदी, वाराणसी : सम्पूणानन्द संस्कृत विश्विद्यालय, पृ. १८

[6] मम्मट, सन् १९९८, पूर्ववत्, पृ. ८३

[7] विश्वनाथ, सन्. २०००, पूर्ववत्, पृ २२९.

[8] विश्वनाथ, सन्. २०००, पूर्ववत्, पृ २६६

[9] जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, सन् १८८८, नागेशभट्टकृत टीका, मुम्बई : निर्णयसागर मन्त्रालय, पृ . २९

रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शम चित्तवृत्ति विशेष को स्थायी भाव कहा जाता हैं। वीर रसका स्थायी भाव उत्साह है। इसका परिभाषा-

"कार्यरम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते" वा "लोकोत्तरेषु कार्येषु क्रियमाणः स्थेयान् प्रयत्नः उत्साह उच्यते" अर्थात् अलौकिक कार्य करने की प्रयत्नको उत्साह कहा जाता है। वास्तव मे उत्साह एक प्रकार की चित्तवृत्ति है जो कोही भी व्यक्ति को किसी भी कार्य करने मे रूचि उत्पन्न करती है। उत्साह शब्दका शाब्दिक अर्थ देखा जाए तो उदात्त स्वभावको उत्साह कहा जा सकता है। उत्साह केवल युद्ध आदि कार्य मे हि अभिमुखिकरण नही करती परन्तु ये दान, त्याग, धर्म, परोपकार आदि कार्य मे भी व्यक्ति को अभिमुख करने के लिए प्रभावित करती है। इसि लिए भरतमुनि भी कहते है-"वीरो नाम उत्तमप्रकृतिकः उत्साहस्थायिभावात्मकः"[10] प्राकृतिक रूप से उत्तम उत्साह स्थायिभावात्मक रस को वीर रस कहा जाता है। अतः वो कहते है-

उत्साहोऽध्यवसायादविषादित्वादविस्मयमोहात्।
विविधादर्थविशेषाद्वीररसो नाम सम्भवति।।[11]

वीर रस उत्साह स्थायि भावद्वारा अभिव्यक्त होने के कारण विषाद, विस्मय. मोह आदि से भिन्न रहता है। ये सभी वीर रस में सहकारी भाव के रूप मे रहते हैं। अतः ये वीर रसके कारण वा प्रकृति नही हैं। विविध अर्थ विशेष वा कार्य विशेष करने की दक्षता में वीर रस अभिव्यक्त होती हैं। भरत के इस कथन के आधार मे वीर रस के अनेक भेद सम्भव है। वीर रस को परिभाषित करते हुए विश्वनाथ कहते है-

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।

महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।।

आलम्बनविभावस्तु विजेतव्यादयो मताः।

विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः।

अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः।।

सञ्चारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोमाञ्चाः।

स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।।[12]

अर्थात्- उत्साह रूप स्थायी भाव का आस्वाद को वीर रस कहा जाता है। अतः इसका आश्रय उत्तम प्रकृतिका वीर होता है। इसका वर्ण स्वर्ण और महेन्द्र देवता है। विजेतव्य शत्रु आदि आलम्बन और उनकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। युद्ध आदि के सामग्री एवं अन्य सहायक साधनों के अन्वेषण अनुभाव हैं। धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च आदि व्यभिचारी भाव हैं। इसके दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर और दयावीर चार भेद हैं।

वीर रस के सन्दर्भ मे रसवादी आचारयों मे मतभेद देखा जाता हैं। दशरूपककार धनञ्जय ने दया, युद्ध और दान तीन प्रकार के वीर रस के भेद वताये है। उनका कहना है-

वीरःप्रतापविनयध्यवसायसत्त्वमोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।

उत्साहभूः स च दया-रण-दानयोगात् त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः।।[13]

अर्थात्- वीर प्रताप, विनय, संकल्प, अस्तित्व, भ्रम, अवसाद, न्याय, आश्चर्य, पराक्रम आदि के आधार पर जो दया, युद्ध और दान के संयोजन से उत्साही होते हैं। अतः इसको तीन भेद मे विभाजन किया हैं। इनके मति, गर्व, धृति ऐर हर्ष सञ्चारी हैं।

काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र ने भी तीन प्रकार के वीर रस को ही स्वीकारा है परन्तु दशरूपककार ने दयावीर, युद्धवीर और दानवीर को वीर रस के प्रकार बताये है। हेमचन्द्र ने तो धर्मवीर, दानवीर और युद्धवीर को वीर रस के प्रकार स्वीकारा है।

नयादिविभावः स्थैर्याद्यनुभावो धृत्यादिव्यभिचार्युत्साहो धर्म-दान-युद्धभेदो वीरः।[14]

अर्थात्- नय आदि विभाव कारणरूप, स्थैर्य आदि अनुभाव कार्यरूप एवं धृति आदि व्यभिचारीभाव सहकारीरूप उत्साह स्थायी भाव से व्यक्त धर्म, दान और युद्ध के भेद से वीर रस तीन प्रकारके होते हैं।

उपरूक्त अध्ययन के आधार मे देखा जाए तो दोनों आचार्ययों में संख्यांकन के आधार मे मतभेद न रहते हुए भी नामांकन के आधार मे भेद देखा जता हैं। नाट्यदर्पणकार ने तो वीर रस के अनेक भेदों को स्वीकारा है-

स चानेकधा युद्ध- धर्म-दान-गुण-प्रतापावर्जनाद्युपाधिभेदात्।[15]

[10] भरत, सन् २०१५, पूर्ववत्, पृ. १८७
[11] भरत, सन् २०१५, पूर्ववत्, पृ. १८९

[12] विश्वनाथ, सन्. २०००, पूर्ववत्, पृ २५७
[13] धनन्जय, दशरूपकम्, सन् १९९४ अष्टम सं., श्रीनिवासशास्त्रि सम्पा., मेरठ : साहित्य भण्डार, पृ. ३८५

[14] हेमचन्द्र, काव्यानुशासनम्, सन् १९०१, व्याख्याकृत शिवदत्तशर्मा, मुम्बई : निर्णयसागर प्रकासन, पृ. ७७
[15] रामचन्द्र, गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, सन् १९८२, नगेन्द्र सम्पा., दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. ३१४

अर्थात्- युद्ध, धर्म, दान, गुण, प्रताप, महिमा और परिहार आदि उपाधि भेद के आधार में वीर रस अनेक प्रकार के होते हैं।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने सभी मतभेदको देखते हुए मध्य मार्गका अन्वेषण किया अतः वीर रस के चार प्रकार वा भेद को स्वीकार किया। इस लेख मे विश्वनाथ के विचार को मध्यनजर करते हुए "वेणीसंहारम्" नाटक मे व्यक्त वीर रस के प्रकार को अध्ययन किया जाएगा। इसके पुष्टि के लिए प्रतिनिधि प्रसङ्गों के उदाहरण दिया जाएगा।

विवेचनात्मक अध्ययन

नाटक दृश्य काव्य विधा के दस प्रकार के रूपकों के उपविधा मे एक प्रमुख और अधिक विकसित उपविधा है। वेणीसंहारम् भट्ट नारायण द्वारा विरचित छ अंकों का नाटक है। इसका नामाकरण भीम की प्रतिज्ञा से प्रतिकात्मक रूप मे किया गया है। नाटक का शिर्षक ही नाटकीय कथावस्तुका वीज कहा जा सकता है। इसका स्पष्ट संकेत भानुमती की तिरस्कृत वाक्यों से खिन्न हुई द्रौपदीको आस्वासित करते हुए कहा गया क्रुद्ध भीमसेन की निम्न उक्ति मे मिलता है।

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाऽभिघात, सञ्चुर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।

स्त्यानाऽवनद्धघनशोणितशोणपाणि, रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः।। [16]

हे देवी मेरे चञ्चल भुजाओं द्वारा घुमाई हुई प्रचण्ड गदा के प्रहार से दोनों जाँघों भग्न हुए दुर्योधन के चिकने एवं चिपके हुए घने रुधिर से लाल वर्ण के हाथों से ये भीम तुम्हारे खुले हुए बालों को अलंकृत करेगा।

उक्त पंक्ति के चतुर्थ पाद "रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः" प्रतिकीत्मक उक्ति से नाटक का नामाकरण किया है। इसी प्रतिकात्मक शिर्षक के चारों ओर नाटकीय कथावस्तु आदि से अन्त तक परिभ्रमण करता है। इस नाटक की संरचना भारतीय नाट्य सिद्धान्तको पूर्ण परिपालन करते हुए किया गया है परन्तु भारतीय नाट्य सिद्धान्त अनुसार नाटक सुखान्त होना चाहिए लेकिन वेणीसंहारम् नाटक दुःखान्तक है। यहाँ आकर भट्टनारायण ने भारतीय नाट्य सिद्धानतको चुनौति दिया है की नाटक मे रस की आश्वादनानुभूति केवल सुखान्त हेनेसे नही होता दुःखान्त नाटक से भी पूर्ण रस की आस्वाद अनुभूति होती है। नाटकीय स्वरूप, कथावस्तु, पात्रव्यवस्था, कार्यावस्था, अर्थप्रकृति, रस और नाटकीय सन्धि पूर्वीय नाट्यशास्त्र अनुसार नाटक के प्रमुख तत्व हैं। नाटकीय भाषा एवं नाटकीय संवादको भी इन तत्वों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। नाटकीय स्वरूपको विवेचना करने से पहले यहाँ नाट्य लक्षणको प्रस्तुत करना अपेक्षित रहता है। इसलिए विश्वनाथ द्वारा प्रदान किया गया लक्षणको आधार के लिए रखा जाता है।

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसंधिसमन्वितम्। विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः।।

सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्। पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिता।।

प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।।

एक एव भवेदङ्गो श्रृङ्गारो वीर एव वा। अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽभुतः।।

चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरूषाः। गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।।[17]

उक्त नाट्य परिभाषा के आधार पर पूर्वीय नाट्य स्वरूप और विशेषता निम्न देखा जाता है-

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्- नाटक का कथानक प्रख्यात इतिहास एवं पुराण में प्रसिद्ध होना चाहिए। वेणीसंहारम् नाटक के कथानक महाभारत की प्रसिद्ध कथा से लिया है। भट्टनारायण ने महाभारत को इस नाटकका उपजिव्य ग्रन्थ बनाया है।

पञ्चसंधिसमन्वितम्- नाटक में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श वा विमर्श एवं निर्वहण पञ्च सन्धि होना आवश्यक है। यहाँ एक विवेच्य विषय रहता है कि पञ्च अर्थप्रकृति और पञ्च कार्यवस्थाओं का संयोजन से नाटक के स्वरूप को सन्धियों मे विभाजन किया जाता है। ये सांख्यङ्कन के आधार पर न होकर क्रमाङ्कन के आधार मे होते हैं। जैसे-

	अर्थप्रकृति	कार्यवस्था	सन्धि
१.	बीज	आरम्भ	मुख
२.	बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
३.	पताका	प्रत्याशा	गर्भ

[16] भट्टनारायणः, वेणीसंहार, सन् १९९९, षष्ठ सं, व्याख्याकृत परमेश्वरदिन पाण्डेय, वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ. ४१

[17] विश्वनाथ, सन् २०००, पूर्ववत्, पृ. ३६२-३६३

४. प्रकरी	नियताप्ति	अवमर्श वा विमर्श
५. कार्य	फलागम	निर्वहण

ये क्रमगत रूप मे एक आपस में संबन्धित रहते हैं। वेणीसंहारम् के प्रथमाङ्क मे अर्थप्रकृति बीज, कार्यवस्था आरम्भ और सन्धि मुख सन्धि देखनेको मिलता है। द्वितीय अङ्क मे अर्थप्रकृति बिन्दु, कार्यवस्था यत्न और प्रतिमुख सन्धि देखने को मिलता है। तृतीय एवं चतुर्थ अङ्क मे अर्थप्रकृति पताका एवं प्रकरी, कार्यवस्था प्रत्याशा एवं नियताप्ति और सन्धि गर्भ एवं अवमर्श देखने को मिलता है। दुर्योधन के बध के प्रसङ्ग मे अर्थप्रकृति कार्य, कार्यवस्था फलागम और सन्धि निर्वहण देखने को मिलता है।

विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः- चरितों के उदात्त गुणों एवं अभ्युदय के उपनिबन्धन के कारण नाटक उदात्त और श्री-समृद्ध होता है। वेणीसंहारम् मे भीम का उद्धत गुण एवं युधिष्ठिर, कृष्ण, अश्वत्थामा आदि मे उदात्त गुण भी देखने को मिलता है अतः नाटकीय प्रभाव उद्धत एवं उदात्त दोनो गुणों से युक्त है। इनके द्वारा नाटनीय व्यपार श्री-समृद्ध है।

सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्- नाटकका उद्भवका कारण सुख-दुःखात्मक जीवन पद्धति है और नाना रस एवं भावों का नाटक मे अनुभव होता हैं। वेणीसंहारम् नाटक उद्भवका कारण पाणडवों का दुःखात्मक जीवन पद्धति है और इस मे वीर,भयानक, अद्भुत, विभत्स, श्रृङ्गार आदि विभिन्न रस एवं भावों का अनुभव निरन्तर होता है।

पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिता- नाटक की संरचना कम से कम पाँच से लेकर अधिक दस अङ्क मे पूर्ण होना चाहिए। वेणीसंहारम् नाटक मे छे अङ्क हैं।

प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः- इस सिद्धान्त अनुसार नाटक का नायक प्रख्यात वंशज धिरोदात्त प्रतापि राजा अथवा दिव्य वा दिव्यादिव्य गुण से युक्त प्रतिनिधित्व क्षमता युक्त व्यक्ति होना चाहिए। वेणिसंहारम् के नायक प्रख्यात कुरू वंशके धिरोदत्त प्रकृतिका है।

एक एव भवेदङ्गो श्रृङ्गारो वीर एव वा- नाटक मे श्रृङ्गार वा वीर दोनों मे एक रस अङ्गी होना चाहिए। वेणिसंहारम् नाटकका अङ्गी रस वीर है।

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे- अन्य सब अङ्ग रस के रूप मे रहते हैं। वेणीसंहारम् नाटक मे अद्भुत, शान्त, भयानक, विभत्स श्रृङ्गार आदि रस अङ्ग रस के रूप में आये हैं। इन्हों ने अङ्गी वीर रसका पोषण किया है।

कार्यो निर्वहणेद्भुतः- नाटक के निर्वहण सन्धि के प्रसङ्ग मे अद्भुत रस होना चाहिए। वेणीसंहारम् नाटक के षष्टमो अङ्क दुर्योधन के बध के प्रसङ्ग मे अद्भुत रस का आस्वादन होता है। अतः इस नाटक का अन्त विस्मय अभिव्यक्त करने मे सक्षम है। इस दृष्टि से वेणीसंहारम् नाटक सफल है।

चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरूषाः- नाटक मे कार्यो मे व्याप्त प्रधान चार वा पांच प्रधान चरितों का वर्णन अपेक्षित रहता हैं। वेणीसंहारम् मे भीम, युधिष्ठिर, दुर्योधन, अर्जुन आदि चार वा पांच से अधिक प्रधान पुरुषों का चरित का वर्णन पाया जाता हैं। इस दृष्टि से भी यह नाटक सफल है।

गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्- नाटक की संरचना गोपुच्छ के अग्रभाग के समान हो तो अच्छा होता है। गोप्च्छाग्रसमान का तात्पर्य कोही नाट्यसिद्धान्तविद् अङ्कों का क्रमशः छोटा होता जाना कहते है तो कोही जैसै गोपुच्छ के अग्रभाग के बाल कोही लम्बे होते है तो कोही छोटे होते है। वैसे ही नाटक मे भी वर्णन-वृत्ति एवं चरित्र-चित्रण होते हैं। वेणीसंहारम् नाटक मे इस गुण पर्याप्त देखा जाता है। अतः इस दृष्टि से भी यह नाटक सफल है।

उक्त प्रस्तुत किया गया नाटक के स्वरूप के आधार पर संस्कृत नाटक का विशेषता अभिव्यक्त किया जा सकता है।

१. संस्कृत नाटकों में वस्तु, नेता एवं रस इन तत्वों को प्रमुख स्थान दिया गया है।

२. कथावस्तु का सम्बन्ध ऐतिहासिक एवं पौराणिक होना चाहिए।

३. नेता अथवा पात्रों का सम्बन्ध कथावस्तु से होना चाहिए। कथावस्तु अनुरूप पात्रों की व्यवस्था होना चाहिए।

४. नाटक के प्रमुख तीन तत्वों वस्तु, नेता और रस में भी रस को सर्वाधिक प्रधानता दी गई है।

५. नाट्यशास्त्रीय नियम अनुसार नाटक का नान्दी पाठ प्रस्तावना (स्थापना) आदि से प्रारंभ और भरतवाक्य से समाप्ति होना चाहिए।

५. काम से कम ५ से लेकर अधिक १० अंकों तक की संख्या होना चाहिए।

७. पात्र अनुसार भाषा का प्रयोग होना चाहिए।

८. अभिनेय गुण प्रमुख एवं संवाद योजना आकर्षक होना चाहिए।

९. नाटक सुखान्त होना चाहिए परन्तु यह कथन युक्तिसंगत नही है। क्यू की संस्कृत में दुःखान्त नाटक अभाव नही है। जैसे- कर्णभारम्, उरुभंगः, वेणीसंहारम्, चण्डकौशिकः आदि।

१०. नायक एवं नायिका के अतिरिक्त विदूषक की महत्वपूर्ण भूमिका होना चाहिए।

११. नाटकों में प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए और अन्त एवं बाह्य प्रकृति का समन्वय होना चाहिए। अतः एव अन्तः प्रकृति की सूक्ष्म एवं सुकुमार भावना चित्रण के लिए बाह्य प्रकृति चित्रफलक का कार्य करती है। प्रकृति का मानवीकरण नाटक का प्रमुख विशेषता है।

१२. भावतत्व की प्रधान होना चाहिए। भावों का सूक्ष्म अंकन तथा उनमें काव्योचित सौन्दर्य को समाहित होना चाहिए। नाटक मे कलात्मकता का महत्व दर्शित होना चाहिए।

१३. कथानक काव्यशिल्प अनुरूप होना चाहिए। कथानक प्रवाह का आद्यन्त निर्वाह होने में पाँच अर्थप्रकृति, कार्यावस्था एवं संधि की योजना होना चाहिए। अभिनय की स्थिति में भारती, सात्वती कैशिकी एवं आरभटी में से कोई एक वृत्ति अपनाना चाहिए।

१४. प्रभावोत्पादकता नाटक की प्रमुख विशेषता है। नाटक की प्रभावोत्पादकता किसी काल की घटनाओं को अभिनय एवं अध्ययन द्वारा दर्शकों पाठकों को प्रत्यक्ष आभास कराना चाहिए। संवाद निर्माण एवं प्रस्तुति दर्शकों एवं पाठकों को घटना से साक्षात् सम्पर्क की अनुभूति होनी चाहिए।

१५. नाटकों की रचना प्रमुख उद्देष्य दुःखी, थके हुये एवं शोक से त्रस्त लोगों का मनोरंजन प्रदान करने के लिए होना चाहिए।

उक्त बुँदागत रूप में अङ्कित कियो गए संकृत नाटक के सभी विशेषताएँ वेणीसंहारम् नाटक में पाया जाता हैं। उक्त अंकित नाटकीय विशेषयाओं मे केवल वास्तविक चरित्रका कृत्रिम अनुकरण करना अधिक मुस्किल लगता है। क्यों की नाटक मे वर्णित भौगोलिक स्थिति एवं प्रकृतिक वातावरण का निर्माण अधिकतर एकस्थानीय नही है। अतः चरित्रों को एक ही समय एक दृश्य मे अनेक स्थान पर प्रस्तुत होना एवं मञ्च व्यवस्थाको निर्माण करना सम्भव नही होता। अतः नाटक मे अभिनेय गुण होते हुए भी व्यवस्थापन की दृष्टि से समस्या उत्पन्न होती है। लेकिन संवाद योजना आकर्षक होनेके कारण नाटक का उक्त दोष अंकित नही होता। मनोरञ्जन प्रदान की दृष्टि से भी वीसंहारम् नाटक सफल देखा जाता है। इसमे केवल एकल वीर रस का हि आश्वादानुभूति नही हता तत्समान भयानक, विभत्स, भद्भुत आदि रस का भी आश्वादन कीया जाता हैं। मञ्चनीयता की दृष्टि से नाटक सहज और सफल नही है। क्यों की नाटक मे चित्रित देश, काल एवं वातावरण का कृत्रिम चरित्रों मे सामाज्यता स्थापित करके मञ्चनीय व्यवस्थाका निर्माण करना प्राय असम्भव सा प्रतित होता है। पठ्य नाटक की दृष्टि से नाटक सफल है क्यों की नटकीय दृश्य चित्रों को शब्द चित्र के रूप मे व्यक्त करने में संवाद योजना सक्षम है।

नाटकीय चरित्र योजन के आधार पर नाटक का कथावस्तु पौराणिक होने के कारण पौराणिक चरित्र को ही स्थापित किया है। नाटकीय परिवेश पौराणिक महाभारत कालिन होने के कारण नाटकीय चरित्र प्रयोग मे भी नवीनता नही झलकती। नाटकीय परिवेश वा नाटकीय देश, काल एवं परिस्थिति महाभारतकालिन ही देखा जाता है। अतः नाटक के चित्र महाभारतकालिन संस्कृति को व्यक्त करने मे सक्षम है। महाभारतकालिन संस्कृति व्यक्त होने के कारण नाटकीय देश, काल एवं परिस्थिति भी तत्कालिन ही है। इस मे देशीय आधार पर तत्कालिन एकदेशीय, काल के आधार पर एकस्थानीय दिन, रात, शुभ और साम एवं परिस्थिति के आधार पर प्रकृतिजन्य संकेतक एवं भुक्त-भोग्य दुःखात्मक, वियोगात्मक, संभावनात्मक त्रस्त, वैचित्रपरक, लक्षित उत्साहपरक और परिणामजन्य संघर्षमूलक देखा जाता हैं। इस नाटक में कूल एक्किस भीम नाटकका नायक (मध्यम पाण्डव), युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण, दुर्योधन नाटकका प्रतिनायक (कौरव श्रेष्ठ), धृतराष्ट्र, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सञ्जय, सुन्दरक, जयन्धर(कञ्चुकी), विनयन्धर (कञ्चुकी), चार्वाक, अश्वसेन, रुधिरप्रिय (राक्षस), सूत, बुधक और पाञ्चालक पुरुष एवं ग्याह्र द्रोपदी (नायिका), भनुमती (प्रतिनायिका) गान्धारी, दुःशला, माता, बुद्धिमतिका, चेटी, सुवदना, तरलिका, विहङ्गिका और वसागन्धा (राक्षसी) स्त्री मानव चित्र का प्रयोग किया गया है। मानव चित्र भी व्यक्त और अव्यक्त वा संकेतिक दो तरह के चरित्र का प्रयोग पाया जाता है। जैसे- भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु, बलराम, दुःशासन, विदुर, शल्य, गान्धारी, माता, दुःशला आदि अव्यक्त वा सांकेतित चरित्र है। मनवेतर चरित्र में प्राय सभी अव्यक्त चरित्र है। जैसे पक्षी, हाथी, घोडे आदि। अचेतन वस्तु पर नाटककार ने कालिदास की तरह चेतनत्व आरोपण नही किया है। अतः इन सभी वस्तुओं को नाटकीय चरित्र के स्थान पर नही रखा जा सकता। इस नाटक का नायक भीम धीरोदत्त प्रकृति का वीर एवं सहासी है। कोही आलोचक के मतानुसार अश्वत्थामा को इस नाटकका नायक मानना चाहिए

पर भी नाटकीय कथावस्तुके आधार पर आद्योपान्त भीम के प्रभाव को देखने को मिलता है। नाटकीय कथावस्तु भीम के चरित्र के आधार पर प्रारम्भ से फलागम तक पहुँचने के कारण इस नाटक का नायक भीम ही है। नायिका पाण्डव-वधू द्रौपदी पञ्च पाण्डव वधू होने पर भी नाटकीय कथावस्तु के आधार पर भीम को ही नाथ शब्द द्वारा सम्बोधित करने के कारण नाटक में केवल भीम की ही नायिका कहा जा सकता। ये मुग्धा प्रकृति की स्वीया नायिका हैं। नाटकीय कथावस्तु की वीजारोपण इनकी खुली चोटी द्वारा अनुभूत दुःखात्मक परिस्थितिजन्य पश्चताप है। अतः पश्चताप ही नाटकीय द्वन्द का वीज है। नाटकीय चरित्रों का तालमेल और संघर्ष आद्योपान्त कथा प्रसंग आरोह एवं अवरोह पर देश, काल, परिस्थिति अनुकूल गतिशिल हैं। नाटक का कथावस्तु कही भी क्षिण वा सुस्त नही है। इसिलिए इस नाटक में कथावस्तुका घनत्व देखा जाता हैं। नाटक में प्रयोग किए गए चरित्र निरन्तर सक्रिय हैं कही भी प्रसंग मे निस्क्रियता का आभास नही होता।

वीर रस के चार प्रकार वा भेद है ये पहले ही उल्लेखित हैं। वेणासंहारम् नाटक का अङ्गी रस युद्ध वीर है। क्यों की इस नाटक में आद्योपान्त कथा-प्रसंग युद्ध पर केन्द्रित है। इस नाटक के प्रस्तावना मे ही सूत्रधार की मंगल कामना को दुत्कारता हुआ भीम नेपथ्य से "स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्रा"[18] मेरे जीवित होते हुए धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि स्वस्थ होंगे? संवाद प्रस्तुत करते हुए युद्धका संकेत देता है। प्रथम अङ्क के अन्त मे द्वितीय अङ्क की प्रारम्भ से युद्ध संकेत मिलता है। द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ से ही युद्ध भूमि मे भीष्म को पाण्डुपुत्रों द्वारा शरशय्या पर सुलाया और अभिमन्यु की वध के खुसी मे दुर्योधन की कर्ण, जयद्रथ आदि सेनापतियों को सम्मान करने के लिए युद्ध भूमि मे जाने की इच्छा कञ्चुकी "विनयन्धर" की संवाद से व्यक्त होता है। अतः द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ से ही युद्ध की स्थिति चित्रित है। नाटक मे युद्धमय वातावरण का चित्रण अन्त तक यथास्थित है। नाटकीय कथावस्तु का उद्देश्य कौरवों का अन्त्य होने के कारण युद्ध वीर ही अङ्गी रस है। इस नाटक मे चरित्र के स्वभाव एवं नाट्य योजना के आधार पर वीर रस के अन्य भेद समाहित हुए देखे जाते हैं। दान वीरत्व की प्रसंग एवं दान वीर चरित्र देखने को नही मिलता। सांकेतिक रूप से व्यक्त हुए सूत की संवाद के आधार पर द्रोणाचार्य को इस वर्ग के चरित्र के रूप में रखा जा सकता है। तृतीय अङ्क के प्रवेशक बाद की प्रसङ्ग के नाटकीय घटना पुत्र मोह के कारण द्रोणाचार्य ने युद्ध भूमि मे शस्त्र त्याग कर अपना प्राण दान देने की संकेत अश्वत्थामा और सूत की संवाद से प्राप्त होता है। इस आधार को मध्यनजर करते हुए नाटक में द्रोणाचार्य को दान वीर चरित्र के रूप मे रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भानुमती, सुवदना और तरलिका के संवाद के प्रसङ्ग मे द्वितीयो अङ्क मे भी किञ्चित दानादिका प्रसङ्ग आया है।

धर्म शब्द का अर्थ धारण करना होता है। जिस काम के लिए हम बने है या जिस काम करने को हमे निश्चित किया है उस काम को करने के लिए उपयुक्त आचरण करना एवं लक्ष प्राप्त होने तक निरन्तर उस काम के प्रति निरन्तर प्रयत्न करना धर्म कहलाता है। उक्त धर्म के विवेचना के आधार पर वेणीसंहारम् नाटक मे धर्म वीर रस की व्यप्तता देखने को मिलता है। नाटकीय चरित्र के रूप में भीम, दुर्योधन, युधिष्ठिर, कर्ण आदि को धर्म वीर चरित्र के रूप मे रखा जा सकता हैं। नाटक में उक्त सभी चरित्र वा पात्र अपने धर्म से किञ्चित विचलित नही हुए हैं। नाटक का नायक भीम क्षत्रीय धर्म पर निबद्ध है एवं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए नाटक में अन्त तक प्रत्यशील है। अपनी प्रतिज्ञा से कही भी विचलित नही होता। अतः एव कहता है-

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाऽभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।

स्त्यानाऽवनद्धघनशोणितशोणपाणिरूत्तंसयिश्यति कचांस्तव देवि! भीम।।[19]

हे देवि चञ्चल भुजाओं द्वारा घुमाई गई गदा के प्रचण्ड प्रहार से दोनों जाँघों भग्न हुए दुर्योधन के चिकने तथा चिपके घने रुधिर से लाल वर्ण हाथों वाला भीम तुमारे बालों को अलंकृत करेगा।

ये भीम ने प्रतिज्ञा किया था इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए नाटक के आद्योपान्त वो प्रयत्नरत हैं। अन्त में नाट के उद्देश्य के रूप में भीम का प्रयत्न पूर्ण हुवा देखा जाता है। प्रयत्न पूर्ण होने के बाद वो कहता है-

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन, स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृशं मम करयोः पीतशेषाण्यसृञ्जि।

कान्ते! राज्ञः कुरूणामतिसरसमिदं मद्गदाचुर्णितोरोरङ्गेऽङ्गेऽसृङ्निषक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै।।[20]

हे प्रिये जिस दुष्ट राजा दुःशासन ने राजाओं की भारी सभा में तुम्हें खींचा था उसी के यह गाढे मेरे दोनो हाथों में लगे पीने से बचे हुए रक्त का स्पर्श करो। मेरी गदा से भग्न जंघाओं वाले

[18] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. १५

[19] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. ४१

[20] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. ३९८

कौरवों के राजा दुर्योधन का अङ्ग भङ्ग में लगा अत्यन्त सुन्दर रुधिर तुम्हारे तिरस्कार से उत्पन्न अनल की शान्ति के लिए पर्यापत है।

उक्त विवेचना के आधार पर नाटक का नायक भीम को धर्म वीर चरित्र के रूप में रखा जा सकता है।

इसी तरह नाटक के प्रतिनायक दुर्योधनको भी धर्म वीर के रूप मे देखा जा सकता है। पञ्चग्राम की सन्धि प्रस्तावना लेकर भगवान कृष्ण स्वयं दूतके रूपमे जाने पर भी उसने क्षेत्रीय राज धर्म मर्यादाको नही त्यागा और सन्धि नही किया। दुसरी और अपने सौं भाई रणभूमि मे मरने के बाद एवं अपना प्रिय मित्र कर्ण मरने की बाद भी उसने युद्ध विराम नही किया। पिता धृतराष्ट्र और माता गान्धारी के द्वारा सन्धि प्रस्ताव स्विकार कर युद्ध को समाप्त करनेकी अनुनय करने पर भी उसने युद्ध त्यगनेकी निश्चय नही किया। अतः वह कहता है-

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरकृतविद्विषः, प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृताऽर्चनाः।

अभिमुखमरीन्सङ्ख्ये ध्यन्तो हताः शतमात्मजाः, वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया।।[21]

विपर्यये त्वस्याऽधिपतेरुलङ्घितः क्षात्रधर्मः स्यात्।[22]

सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले, ऐश्वर्यों को भोग करने वाले, शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले, नतमस्तक राजाओं के हजारों चूडामणियों से अर्चन करने वाले, युद्ध में शत्रुओं का संहार करते हुए आप के समक्ष सौ पुत्र मार डाले गये। अतः माता सहित पिता जी सगर नृप द्वारा धारण किये गये भार के समान ही आप पृथ्वी के भार को धारण करें। इसके विपरित कार्य कर्ने पर क्षात्र धर्म का उल्लंघन हो जाएगा।

दुर्योधन अपने मर्यादा पर अडिग देखा जाता है। उसके मन मे युद्ध करूं या न करूं की दुविधा द्वन्द उत्पन्न होने पर भी युद्ध को ही चुनता है और कहता है-

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः।

समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः।।[23]

असह्य शोक से उत्पन्न यह अग्नि मुझे जला रही है। युद्ध करने और युद्ध न करने ये दोनों दशाओं मे समान विपत्ति होने के कारण मुझे युद्ध करना ही उत्तम है।

उक्त विवेचना के आधार पर नाटक के प्रतिनायक दुर्योधनको धर्म वीर के रूप मे रखा जा सकता है।

पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर सत्यवादिता धर्म पालन करने और मेरे एक भी भाई रणभूमि में अगर मर गया तो मैं अपना प्राण त्याग दुङ्गा इस प्रतिज्ञा पर स्थिर रहने एवं नाटक के नियताप्ति भाग मे ब्राह्मण वेशधारी राक्षस द्वारा भीम और अर्जुन दुर्योधन से युद्ध करते समय मारे जाने की झुठा सन्देश सुनाने पर द्रौपदी सहित खुद को जिन्दा ही चिता पर जलाने मे तत्पर होता है। इस आधार पर युधिष्ठिर को भी धर्म वीर के रूप मे रखा जा सकता।

कर्ण को अश्वत्थामा के साथ वाक द्वन्द में क्षात्र धर्मोचित संबाद व्यक्त करने, दुर्योधन को प्रोत्साहन प्रदान करने और अपने समक्ष पुत्र मारे जाने के बाद अनेक मानसिक, शारीरिक, भौतिक युद्ध विपत्ति आने पर सेनापतित्व धर्म न त्यागने के कारण धर्म वीर कहा जा सकता।

करूणा एवं दूसरे की कष्ट हरण करने एवं दूर करने की प्रगाढ इच्छा को दया कहा जाता है। इस आधार पर वेणीसंहारम् नाटक में दया वीर रस का भी अभिव्यक्तता देखा जाता है। नाटकीय चरित्रों मे नाटककार ने नाटक के नायक भीम, प्रतिनायक दुर्योधन, कर्ण, युधिष्ठिर, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र आदि को दया वीर के रूप में चित्रित किया है। नाटक के नायक भीम नायिका द्रौपदी के उपर करूणा व्यक्त करता है और द्रौपदी के कष्ट हरण करने एवं दुःख दूर करने की प्रगाढ इच्छा से ही समर का वातावरण सृजना होता है। नाटक के अन्त में भी वो अपने प्रतिज्ञा पूरा होने पर द्रौपदी की कष्ट दूर होने का महसुस करता है। प्रतिनायक दुर्योधन अपने भाईयों,कर्ण, द्रोणाचार्य, भिष्म आदि पर करूणा का भाव व्यक्त करता है। कर्ण दुर्योधन पर करूणा का भाव व्यक्त करता है। युधिष्ठिर अपने भाईयों एवं द्रौपदी पर दया का भाव व्यक्त करता है। अश्वत्थामा अपने पिता के उपर दया का भाव व्यक्त करता है और पिता को संरक्षण करने मे असफल होने के कारण पश्चताप करता है। धृतराष्ट्र एवं गान्धारी अपने सौं पुत्रौं के उपर करूणा के भाव व्यक्त करते हैं। नाटक की नायिका द्रौपदी भीम के उपर करूणा की भाव व्यक्त करती है। नाटक मे अन्य

[21] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. २६३
[22] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. २६४
[23] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. २७५

सहायक चरित्रों मे भी दया वा करूणा का भाव अभिव्यक्ति का अनुभूति किया जा सकता है।

रस अभिव्यञ्जना के आधार पर देखा जाए तो वेणीसंहारम् नाटक का अङ्गी रस युद्ध वीर है। नाटककार ने इस नाटक मे माहाभारत का युद्धांश को ही नाटकीय रूप मे व्यक्त किया है। इस नाटक का नायक भीम धीरोदत्त स्वभावका युद्धकौशल मध्यम पाण्डव युद्ध वीर है। अतः उसी को नाटक का प्रमुख पात्र बनाया है। वो गदायुद्ध मे दक्ष है। भीम के अतिरिक्त प्रतिनायक दुर्योधन, कर्ण, अर्जुन और अश्वत्थामा का युद्धोत्सुकता नाटक मे स्पष्ट देखने को मिलता है। इस के अतिरिक्त संकेतिक पात्र कर्णपुत्र वृषसेन, अभिमन्यु आदिका युद्ध कौशल नाटकीय संवाद के माध्यम से मिलता है। अतः नाटक के आद्योपान्त युद्ध वीर रस का प्रभाव नाटक मे देखा जाता है। नाटक के नायक भीम का युद्धोत्सुकता का संकेत इस तरह देखा जाता है-

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाऽऽघातसञ्चूर्णितोरोः,
क्रूरस्याऽऽधाय पादं तव शिरशि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते।

त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेनाऽऽनखाग्रं,
स्त्यानेनाऽऽर्द्रेण चाऽऽक्तः स्व.मनुभविता भूषणं भीममस्मि।।[24]

कल प्रातः काल ही लोगों को देखते-देखते मेरी स्थूल भुजाओं से चलाई गई गुर्वी गदा के प्रहार से चकनाचूर हुई जाँघों वाले क्रूर तेरे शिर पर पाव रखकर सौ भाईयों के समूह मे शेष अकेले जिवित पिण्डीभूत तथा गीले तेरे टपक रहे रुधिररूप चन्दन से नाखूनों के अग्रभाग पर्यन्त रक्त से सजा हुआ मैं भयङ्कर भूषण पहने होने का अनुभव करने जा रहा हूँ।

इस उक्ति मे भीम का दुर्योधन के प्रति युद्धोत्सुकता व्यक्त होता है। यहा पर युद्ध वीर रस अभिव्यक्त हो रहा।

नाटक के प्रतिनायक दुर्योदनका युद्धोत्सुकता निम्न उक्ति मे देखा जाता है-

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तोर्वा, प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।

अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्राः, बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्यैव दर्पः।।[25]

सम्पूर्ण लोक के अधिपति मेरी आज्ञा से जुये में जीती हुई तेरी पत्नी को दासी समझ कर पशु सदृश निच तेरे, अर्जुन, राजा युधिष्ठिर और नकुल सहदेव के सामने बाल पकड कर खींचा गया। इस शत्रुता से जो राजा मारे गये उन्हों ने क्या अपकार किया था बोलो। भुजाओं के बल रूपी धनाभिमान से मत्त मुझे जीते विना तुम्हारा गर्व करना व्यर्थ है।

इस प्रसङ्ग मे दुर्योधन के सभी भाईयों और सैन्यशक्ति समाप्त होने पर भी पाण्डवों को तिरस्कार करता हुआ दुर्योधन भीम के प्रति युद्ध करने का उत्साह देखाता है। अतः यहाँ युद्ध वीर रस अभिव्यक्त होता है।

नाटक के प्रतिनायक दुर्योदनका मित्र कर्ण भी नाटक मे युद्ध वीर के रूप मे उपस्थित होता है। कर्ण का अश्वत्थामा के प्रति द्वन्द प्रसङ्ग और दुर्योधनको आश्वस्त करने की प्रसङ्ग मे युद्ध वीरत्व भाव स्पष्ट व्यक्त हुआ देखा जाता है। इसी तरह कौरव पक्षपाती द्रोण पुत्र अश्वत्थामाका युद्ध वीरत्व भाव द्रोणाचार्य द्वारा पुत्रमोह मे सस्त्र त्यगने के वाद पाण्डवों द्वारा किये गए छल के परिणाम रूप मे पण्डवों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा के प्रसङ्ग मे व्यक्त होता है। इसी तरह कौरव दल के ही योद्धा कर्ण के प्रति वाक द्वन्द के प्रसङ्ग मे भी उनका युद्ध वीरत्व भाव व्यक्त होता है। पाण्डव मध्यम पुत्र अर्जुन का भी युद्ध वीरत्व भाव नाटक के विभिन्न प्रसङ्ग मे प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त होता है। इसी तरह नाटक मे सांकेतिक वा गौण चरित्र के रूप मे आए हुए कर्णपुत्र वृषसेन और अर्जुनपुत्र अभिमन्यु का भी युद्ध वीरत्व कौशल लाक्षणिक रूप से व्यक्त होता है। इतने ही नही इस नाटक मे अन्य विभिन्न प्रसङ्ग और चरित्रों मे भी युद्ध वीरत्व भाव देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

साहित्य द्वारा प्राप्त होने वाले परमानन्दको ही रस कहा जाता है। साहित्यानन्द रूप अर्थ में रस शब्द का व्युत्पत्ति भावपरक रसस्यते आस्वाद्यते इति रसः इस तरह से किया जाता है। रस शास्त्र के आधर पर साहित्य रस नौं प्रकारके है और उनके स्थायी भाव भी नौ ही प्रकार के है। विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव के संयोग से रसाभिव्यक्ति होती है। रसास्वादन ममत्व एवं परत्व के भाव से उपर, सविकल्पक एवं निर्विकल्पक उभयात्मक प्रकृति द्वारा अपने ही आकार के समान अनुभूति गम्य होने से आस्वादन किया जाता है। वीर रसका स्थायी भाव उत्साह है। प्राकृतिक रूप से उत्तम उत्साह स्थायिभावात्मक रस को वीर रस कहा जाता है। इसके दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर और दयावीर चार भेद हैं। नाटक दृश्य काव्य विधा के दस प्रकार के रुपकों के उपविधा मे एक प्रमुख और अधिक विकसित उपविधा है। वेणीसंहारम् भट्ट नारायण द्वारा विरचित छ अंकों

[24] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. २९२

[25] भट्टनारायण, सन् १९९९, पूर्ववत्, पृ. २८८

का नाटक है। इसका नामाकरण भीम की प्रतिज्ञा से प्रतिकात्मक रूप मे किया गया है। वेणीसंहारम् नाटक की संरचना भारतीय नाट्य सिद्धान्तको पूर्ण परिपालन करते हुए किया गया है परन्तु भारतीय नाट्य सिद्धान्त अनुसार नाटक सुखान्त होना चाहिए लेकिन वेणीसंहारम् नाटक दुःखान्तक है। यहाँ आकर भट्टनारायण ने भारतीय नाट्य सिद्धानतको चुनौति दिया है। वेणीसंहारम् नाटक का अङ्गी रस युद्ध वीर रस है। नाटक का नायक भीम धीरोदत्त प्रकृतिका युद्धवीर है। नायिका मुग्धा प्रकृतिकी स्विया द्रौपदी है। नाटकका उपजिव्य ग्रन्थ महाभारत है। नाटक मे अङ्ग या सहायक रस के रूप मे रौद्र, विभत्स, उद्भुत, करुण, श्रृङ्गार आदि रस व्यक्त होते है। युद्ध वीर रस इस नाटकका अङ्गी रस होते हुए भी नाटक मे वीर रस के चार भेद ही दान वीर, दया वीर, धर्म वीर और युद्ध वीर रस कतआवस्तु, कथा प्रसङ्ग, नाटकीय घटना एवं संवाद, चरित्रों के देश, काल, परिस्थिति अनुकूल आचरण से अभिव्यक्त होता है। अतः संस्कृत नाट्य साहित्य मे इस नाटक को सभी दृष्टि से सफल नाटक के रूप मे रखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, सन् २०००, (दशम-सं), सत्यव्रत शर्मा व्याख्याकृत, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन
२. मम्मट, काव्यप्रकाशः, सन् १९९८, (एकादश सं.) सत्यव्रत सिंह व्याख्याकृत, वाराणासी : चौखम्बा विद्याभवन
३. भरत, नाट्यशास्त्र, सन् २०१५, (द्वितीय सं) मनोरमा हिन्दीव्याख्या, द्वितीयो भाग, पारशनाथद्विवेदी, वाराणसी : सम्पूणानन्द संस्कृत विश्विद्यालय
४. धनन्जय, दशरूपकम्, सन् १९९४ अष्टम सं., श्रीनिवासशास्त्रि सम्पा., मरेठ : साहित्य भण्डार
५. हेमचन्द्र, काव्यानुशासनम्, सन् १९०१, व्याख्याकृत शिवदत्तशर्मा, मुम्बई : निर्णयसागर प्रकासन
६. रामचन्द्र, गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, सन् १९८२, नगेन्द्र सम्पा., दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय
७. जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, सन् १८८८, नागेशभट्टकृत टीका, मुम्बई : निर्णयसागर मन्त्रालय
८. त्रिपाठी, राममूर्ति, साहित्यशास्त्र के प्रमुख पक्ष, सन् २०१५, दिल्ली : वाणी प्रकाशन
९. दास, श्यामसुन्दर, साहित्यालोचन, सन् २०१३, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ
१०. मिश्र, सभापति, भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिन्तन, सन् २०१३, इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन
११. चौधरी, सत्यदेव एवं शान्तिस्वरुप गुप्त, भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, सन् २०१३, दिल्ली : अशोक प्रकाशन
१२. शर्मा, शिवमूर्ति, भारतीय काव्यशास्त्र, सन् २०१३, इलाहावाद : शारदा पुस्तक भवन
१३. नेपाल, हेमन्तकुमार, साहित्य सङ्कलन, सन् २०२३, सिलिगुडी : हाम्रो किताब घर